ज्ञाताधर्मकथा की सांस्कृतिक विरासत

प्रोफेसर प्रेमसुमन जैन

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में ऐतिहासिक कथानकों एवं काल्पनिक दृष्टान्तों के माध्यम से साधना में दृढ़ता की प्रभावी प्रेरणा मिलती है। इसमें सांस्कृतिक दृष्टि से भाषा, लिपि, कला, व्यापार, रीति–रिवाज आदि के संबंध में भी प्रभूत सामग्री प्राप्त होती है। प्राकृत एवं जैन धर्म-दर्शन के प्रतिष्ठित विद्वान् डॉ. प्रेमसुमन जी, उदयपुर ने अपने आलेख में ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के सांस्कृतिक महत्त्व को उजागर किया है। —**सम्पादक**

प्राकृत भाषा के प्राचीन ग्रन्थों में अर्धमागधी में लिखित अंगग्रन्थ प्राचीन भारतीय संस्कृति और चिंतन के क्रमिक विकास को जानने के लिए महत्त्वपूर्ण साधन हैं। अंग ग्रन्थों में ज्ञाताधर्मकथा का विशिष्ट महत्त्व है। कथा और दर्शन का यह संगम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के नाम में भी इसका विषय और महत्त्व छिपा हुआ है। उदाहरण प्रधान धर्मकथाओं का यह प्रतिनिधि ग्रन्थ है। ज्ञातपुत्र भगवान महावीर की धर्म कथाओं को प्रस्तुत करने वाला इस ग्रन्थ का नाम ज्ञाताधर्मकथा सार्थक है। विद्वानों ने अन्य दृष्टियों से भी इस ग्रन्थ के नामकरण की समीक्षा की है।[1]

दृष्टान्त एवं धर्म कथाएँ

आगम ग्रन्थों में कथा-तत्त्व के अध्ययन की दृष्टि से ज्ञाताधर्मकथा में पर्याप्त सामग्री है। इसमें विभिन्न दृष्टान्त एवं धर्म कथाएं हैं, जिनके माध्यम से जैन तत्त्व—दर्शन को सहज रूप में जनमानस तक पहुँचाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा आगमिक कथाओं का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें कथाओं की विविधता है और प्रौढ़ता भी। मेघकुमार, थावच्चापुत्र, मल्ली तथा द्रौपदी की कथाएँ ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं। प्रतिबुद्धराजा, अर्हन्नक व्यापारी, राजा रूक्मी, स्वर्णकार की कथा, चित्रकार कथा, चोखा परिव्राजिका आदि कथाएँ मल्ली की कथा की अवान्तर कथाएँ हैं। मूलकथा के साथ अवान्तर कथा की परम्परा की जानकारी के लिए ज्ञाताधर्मकथा आधारभूत स्रोत है। ये कथाएँ कल्पना—प्रधान एवं सोद्देश्य हैं। इसी तरह जिनपाल एवं जिनरक्षित की कथा, तेतलीपुत्र कथा, सुषमा की कथा एवं पुण्डरीक कथा कल्पना प्रधान कथाएँ हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में दृष्टान्त और रूपक कथाएं भी हैं। मयूरों के अण्डों के दृष्टान्त से श्रद्धा और धैर्य के फल को प्रकट किया गया हैं। दो कछुओं के उदाहरण से संयमी और असयंमी साधक के परिणामों को उपस्थित किया गया है। तुम्बे के दृष्टान्त से कर्मवाद को स्पष्ट किया गया है। दावद्रव नामक वृक्ष के उदाहरण द्वारा आराधक और विराधक के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। ये दृष्टान्त कथाएँ परवर्ती साहित्य के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं।

इस ग्रन्थ में कुछ रूपक कथाएँ भी हैं। दूसरे अध्ययन की कथा धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा है। यह आत्मा और शरीर के संबंध का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपक है। सातवें अध्ययन की रोहिणी कथा पांच व्रतों की रक्षा और वृद्धि को रूपक द्वारा प्रस्तुत करती है। उदकजात नामक कथा संक्षिप्त है। किन्तु इसमें जल-शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा एक ही पदार्थ के शुभ एवं अशुभ दोनों रूपों को प्रकट किया गया है। अनेकान्त के सिद्धान्त को समझाने के लिए यह बहुत उपयोगी है। नन्दीफल की कथा यद्यपि अर्ध कथा है, किन्तु इसमें रूपक की प्रधानता है। समुद्री अश्वों के रूपक द्वारा लुभावने विषयों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

छठे अध्ययन में कर्मवाद जैसे गुरु गंभीर विषय को रूपक के द्वारा स्पष्ट किया गया है। गणधर गौतम की जिज्ञासा के समाधान में भगवान ने तूंबे के उदाहरण से इस बात पर प्रकाश डाला कि मिट्टी के लेप से भारी बना हुआ तूंबा जल में मग्न हो जाता है और लेप हटने से वह पुन: तैरने लगता है। वैसे ही कर्मों के लेप से आत्मा भारी बनकर संसार सागर में डूबता है और उस लेप से मुक्त होकर ऊर्ध्वगति करता है। दसवें अध्ययन में चन्द्र के उदाहरण से प्रतिपादित किया है कि जैसे कृष्णपक्ष में चन्द्र की चारु चन्द्रिका मंद और मंदतर होती जाती है और शुक्ल पक्ष में वही चन्द्रिका अभिवृद्धि को प्राप्त होती है वैसे ही चन्द्र के सदृश कर्मों की अधिकता से आत्मा की ज्योति मंद होती है और कर्म की ज्यों–ज्यों न्यूनता होती है त्यों–त्यों उसकी ज्योति अधिकाधिक जगमगाने लगती है।

ज्ञाताधर्मकथा पशुकथाओं के लिए भी उद्‌गम ग्रन्थ माना जा सकता है। इस एक ही ग्रन्थ में हाथी, अश्व, खरगोश, कछुए, मयूर, मेंढक, सियार आदि को कथाओं के पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। मेरुप्रभ हाथी ने अहिंसा का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह भारतीय कथा साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कंध में यद्यपि २०६ साध्वियों की कथाएँ हैं, किन्तु उनके ढांचे, नाम, उपदेश आदि एक से हैं। केवल काली की कथा पूर्ण कथा है। नारी-कथा की दृष्टि से यह कथा महत्त्वपूर्ण है।[२]

ज्ञाताधर्मकथा में भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्ष अंकित हुए हैं। प्राचीन भारतीय भाषाओं, काव्यात्मक प्रयोगों, विभिन्न कलाओं और विद्याओं, सामाजिक जीवन और वाणिज्य व्यापार आदि के संबंध में इस ग्रन्थ में ऐसे विवरण उपलब्ध हैं जो प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास में अभिनव प्रकाश डालते हैं। इस ग्रन्थ के सूक्ष्म सांस्कृतिक अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है। कुछ विद्वानों ने इस दिशा में कार्य भी किया है,[३] जो आगे के अध्ययन के लिए सहायक हो सकता है। यहाँ संक्षेप में ग्रन्थ में अंकित कतिपय सांस्कृतिक बिन्दुओं को उजागर करने का प्रयत्न है।

भाषा और लिपि

इस ग्रन्थ में प्रमुख रूप से अर्धमागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है। किन्तु साथ ही अन्य प्राकृतों के तत्त्व भी इसमें उपलब्ध हैं। देशी शब्दों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग इस ग्रन्थ की भाषा को समृद्ध बनाता है। इस ग्रन्थ में प्रस्तुत कथाओं के माध्यम से यह तथ्य भी सामने आता है कि प्राचीन समय में सम्पन्न और संस्कारित व्यक्ति के लिए बहुभाषाविद् होना गौरव की बात होती थी। मेघकुमार को विविध प्रकार की अठारह देशी भाषाओं का विशारद कहा गया है।[4] ये अठारह देशी भाषाएं कौनसी थीं, इस बात का ज्ञान आठवीं शताब्दी के प्राकृत ग्रन्थ कुवलयमाला के विवरण से पता चलता है।[5] यद्यपि अठारह लिपियों के नाम विभिन्न प्राकृत ग्रन्थों में प्राप्त हो जाते हैं।[6] इन लिपियों के संबंध में आगमप्रभाकर पुण्यविजयजी म.सा. का यह अभिमत था कि इनमें अनेकों नाम कल्पित हैं। इन लिपियों के संबंध में अभी तक कोई प्राचीन शिलालेख भी उपलब्ध नहीं हुआ है, इससे भी यह प्रतीत होता है कि ये सभी लिपियां प्राचीन समय में ही लुप्त हो गई, या इन लिपियों का स्थान ब्राह्मीलिपि ने ले लिया होगा। कुवलयमाला में उद्योतनसूरि ने गोल्ल, मध्यप्रदेश, मगध, अन्तर्वेदि, कीर, ढक्क, सिन्धु, मरू, गुर्जर, लाट, मालवा, कर्नाटक, ताइय (ताजिक), कोशल, मरहट्ट और आन्ध्र इन सोलह भाषाओं का उल्लेख किया है। साथ ही सोलह गाथाओं में उन भाषाओं के उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। डॉ. ए.मास्टर का सुझाव है कि इन सोलह भाषाओं में औड्र और द्राविडी भाषाएँ मिला देने से अठारह भाषाएँ हो जाती हैं, जो देशी हैं।

कला और धर्म

ज्ञाताधर्मकथा में विभिन्न कलाओं के नामों का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है। ७२ कलाओं का यहाँ उल्लेख है, जिसकी परम्परा परवर्ती प्राकृत ग्रन्थों में भी प्राप्त है।[6] इन कलाओं में से अनेक कलाओं का व्यावहारिक प्रयोग भी इस ग्रन्थ के विभिन्न वर्णनों में प्राप्त होता है। मल्लि की कथा में उत्कृष्ट चित्रकला का विवरण प्राप्त है। चित्रशालाओं के उपयोग भी समाज में प्रचलित थे।[7] ज्ञाताधर्मकथा धर्म और दर्शन-प्रधान ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों और दार्शनिक मतों का विवेचन भी है। समाज में अनेक मतों को मानने वाले धार्मिक प्रचारक होते थे, जो व्यापारियों के साथ विभिन्न स्थानों की यात्रा कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। धन्य सार्थवाह की समुद्रयात्रा के समय अनेक परिव्राजक उनके साथ गए थे। यद्यपि इन परिव्राजिकों के नाम एवं पहचान आदि अन्य ग्रन्थों से प्राप्त होती है। ब्राह्मण और श्रमण जैसे धार्मिक सन्त उनमें प्रमुख थे। आगे चलकर ऐसे धार्मिक प्रचारकों की एक स्थान पर राजा के समक्ष अपने–अपने मतों की परीक्षा भी प्रचलित हो गई थी।[8] धार्मिक दृष्टि से ज्ञाताधर्मकथा में वैदिक परम्परा में प्रचलित श्रीकृष्ण कथा का भी विस्तार से वर्णन हुआ है। श्रीकृष्ण, पांडव, द्रौपदी आदि पात्रों के संस्कारित जीवन के अनेक प्रसंग वर्णित हैं। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ में पहली बार श्रीकृष्ण के नरसिंहरूप का वर्णन है,[10] जबकि वैदिक ग्रन्थों में विष्णु का नरसिंहावतार प्रचलित है।

समाज सेवा और पर्यावरण संरक्षण

इस ग्रन्थ के धार्मिक वातावरण में भी समाज-सेवा और पर्यावरण-सरंक्षण के प्रति सम्पन्न परिवारों का रुझान देखने को मिलता है। राजगृह के निवासी नन्द मणिकार द्वारा एक ऐसी वापी का निर्माण कराया गया था जो समाज के सामान्य वर्ग के लिए सभी प्रकार की सुख–सुविधाएं उपलब्ध कराती थी। वर्तमान युग में जैसे सम्पन्न लोग शहर से दूर वाडी का निर्माण कराते हैं उसी की यह पुष्करणी वापिका थी। उसके चारों ओर मनोरंजन पार्क थे। उनमें विभिन्न कलादीर्घाएं और मनोरंजन शालाएं थी। राहगीरों और रोगियों के लिए चिकित्सा केन्द्र भी थे।[11] इस प्रकार का विवरण भले ही धार्मिक दृष्टि से आसक्ति का कारण रहा हो, किन्तु समाज-सेवा और पर्यावरण-संरक्षण के लिए प्रेरणा था।

ज्ञाताधर्मकथा में प्राप्त इस प्रकार के सांस्कृतिक विवरण तत्कालीन उन्नत समाज के परिचायक हैं। इनसे विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोगों का भी पता चलता है। चिकित्सा के क्षेत्र में सोलह प्रमुख महारोगों और उनकी चिकित्सा के विवरण आयुर्वेद के क्षेत्र में नई जानकारी देते हैं। कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं जहाँ इस प्रकार के तेलों के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन है जो सैंकड़ों जड़ी बूटियों के प्रयोग से निर्मित होते थे। उनमें हजारों स्वर्णमुद्राएँ खर्च होती थीं। ऐसे शतपाक एवं सहस्रपाक तेलों का उल्लेख इस ग्रन्थ में है। इसी ग्रन्थ के बारहवें अध्ययन में जलशुद्धि की प्रक्रिया का भी वर्णन उपलब्ध है जिससे गटर के अशुद्ध जल को साफ कर शुद्ध जल में परिवर्तित किया जा सकता है।[12] यह प्रयोग इस बात का भी प्रतीक है कि संसार में कोई वस्तु या व्यक्ति सर्वथा अशुभ नहीं है, घृणा का पात्र नहीं है।

व्यापार एवं भूगोल

प्राचीन भारत में व्यापार एवं वाणिज्य उन्नत अवस्था में थे। देशी एवं विदेशी दोनों प्रकार के व्यापारों में साहसी वणिक् पुत्र उत्साहपूर्वक अपना योगदान करते थे। ज्ञाताधर्मकथा में इस प्रकार के अनेक प्रसंग वर्णित हैं। समुद्रयात्रा द्वारा व्यापार करना उस समय प्रतिष्ठा समझी जाती थी। सम्पन्न व्यापारी अपने साथ पूंजी देकर उन निर्धन व्यापारियों को भी साथ में ले जाते थे, जो व्यापार में कुशल होते थे। समुद्रयात्रा के प्रसंग में पोतपट्टन और जलपत्तन जैसे बन्दरगाहों का प्रयोग होता था। व्यापार के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ जहाज में भरकर व्यापारी ले जाते थे और विदेश से रत्न कमाकर लाते थे। अश्वों का व्यापार होता था।[13] इस प्रसंग में अश्व विद्या की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा की विभिन्न कथाओं में जो भौगोलिक विवरण प्राप्त होता है वह प्राचीन भारतीय भूगोल के लिए विशेष उपयोग का है। राजगृही[14], चम्पा[15], वाराणसी, द्वारिका, मिथिला, हस्तिनापुर[16], साकेत, मथुरा, श्रावस्ती आदि प्रमुख प्राचीन नगरों के वर्णन काव्यात्मक दृष्टि से जितने महत्त्व के हैं, उतने ही भौगोलिक दृष्टि से भी। राजगृह के प्राचीन नाम गिरिव्रज, वसुमति, बार्हद्रतपुरी, मगधपुर, बराय, वृषभ, ऋषिगिरी, चैत्यक बिम्बसारपुरी और कुशाग्रपुर थे। बिम्बसार के शासनकाल में राजगृह नगरी में आग लग जाने से वह जल गई इसलिए राजधानी हेतु नवीन राजगृह का निर्माण करवाया। इन नगरों में परस्पर आवागमन के मार्ग क्या थे और इनकी स्थिति क्या थी, इसकी जानकारी भी एक शोधपूर्ण अध्ययन का विषय बनती है। विभिन्न पर्वतों, नदियों, वनों के विवरण भी इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। कुछ ऐसे नगर भी हैं, जिनकी पहचान अभी करना शेष है।[17]

सामाजिक धारणाएँ

इस ग्रन्थ में सामाजिक रीतिरिवाजों, खान–पान, वेशभूषा एवं धार्मिक तथा सामाजिक धारणाओं से संबंधित सामग्री भी एकत्र की जा सकती है। महारानी धारिणी की कथा में स्वप्नदर्शन और उसके फल पर विपुल सामग्री प्राप्त है।[18] जैनदर्शन के अनुसार स्वप्न का मूल कारण दर्शनमोहनीय कर्म का उदय है। दर्शनमोह के कारण मन में राग और द्वेष का स्पन्दन होता है, चित्त चंचल बनता है। शब्द आदि विषयों से संबंधित स्थूल और सूक्ष्म विचार–तरंगों से मन प्रकंपित होता है। संकल्प–विकल्प या विष्योन्मुखी वृत्तियां इतनी प्रबल हो जाती हैं कि नींद आने पर भी शांति नहीं होती। इन्द्रियाँ सो जाती हैं, किन्तु मन की वृत्तियां भटकती रहती हैं। वे अनेक विषयों का चिन्तन करती रहती हैं। वृत्तियों की इस प्रकार की चंचलता ही स्वप्न है। आचार्य जिनसेन ने स्वस्थ अवस्था वाले और अस्वस्थ अवस्था वाले ये दो स्वप्न के प्रकार माने हैं। जब शरीर पूर्ण स्वस्थ होता है तो मन पूर्ण शांत रहता है, उस समय जो स्वप्न दीखते हैं वे स्वस्थ अवस्था वाले स्वप्न हैं। ऐसे स्वप्न बहुत ही कम आते हैं और प्रायः सत्य होते हैं। मन विक्षिप्त हो और शरीर अस्वस्थ हो उस समय देखे गये स्वप्न असत्य होते हैं–

"ते च स्वप्ना द्विधा म्नाता स्वस्थास्वस्थात्मगोचराः,
समैस्तु धातुभिः स्वस्वविषमैरितरैर्मता।
तथ्या स्युः स्वस्थसंदृष्टा मिथ्या स्वप्ना विपर्ययात्,
जगत्प्रतीतमेतद्धि विद्धि स्वप्नविमर्शनम्।।" –महापुराण 41–59/60

इसी प्रकार धारिणी के दोहद की भी विस्तृत व्याख्या की जा सकती है। उपवन भ्रमण का दोहद बड़ा सार्थक है। दोहद की इस प्रकार की घटनाएँ आगम–साहित्य में अन्य स्थानों पर भी आई हैं। जैन कथा साहित्य में, बौद्ध जातकों में और वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में दोहद का अनेक स्थानों पर वर्णन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। यह ज्ञातव्य है कि जब महिला गर्भवती होती है तब गर्भ के प्रभाव से उसके अन्तर्मानस में विविध प्रकार की इच्छाएं उद्‌बुद्ध होती हैं। ये विचित्र और असामान्य इच्छाएं दोहद, दोहला कही जाती हैं। दोहद के लिए संस्कृत साहित्य में 'द्विहृद' शब्द भी आया है। द्विहृद का अर्थ है दो हृदय को धारण करने वाली। अंगविज्जा जैन साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ में विविध दृष्टियों से दोहदों के संबंध में गहराई से चिन्तन किया है। जितने भी दोहद उत्पन्न होते हैं उन्हें पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है– शब्दगत, गंधगत, रूपगत, रसगत और स्पर्शगत। क्योंकि ये ही इन्द्रियों के मुख्य विषय हैं और इन्हीं की दोहदों में पूर्ति की जाती है।[19]

नौवें अध्ययन में विभिन्न प्रकार के शकुनों का उल्लेख है।[20] शकुन दर्शन ज्योतिषशास्त्र का एक प्रमुख अंग है। शकुनदर्शन की परम्परा प्रागैतिहासिक काल से चलती आ रही है। कथा साहित्य का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि जन्म, विवाह, बहिर्गमन, गृहप्रवेश और अन्यान्य मांगलिक प्रसंगों के अवसर पर शकुन देखने का प्रचलन था। गृहस्थ तो शकुन देखते ही थे, श्रमण भी शकुन देखते थे। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार एक वस्तु शुभ मानी जाती है और वही वस्तु दूसरी परिस्थितियों में अशुभ भी मानी जाती है। एतदर्थ शकुन विवेचन करने वाले ग्रन्थों में मान्यता-भेद भी प्राप्त होता है। प्रकीर्णक 'गणिविद्या' में लिखा है कि शकुन मुहूर्त से भी प्रबल होता है। जंबूक, चास (नीलकंठ), मयूर, भारद्वाज, नकुल यदि दक्षिण दिशा में दिखलाई दें तो सर्वसंपत्ति प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ में भी पारिवारिक संबंधों, शिक्षा तथा शासन-व्यवस्था आदि के संबंध में भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। धारिणी के शयनकक्ष का वर्णन स्थापत्य कला और वस्त्रकला की अमूल्य निधि है।

संदर्भ

1. (क) ज्ञाताधर्मकथा (सम्पा.–पं. शोभाचन्द भारिल्ल), ब्यावर, 1989
   (ख) भगवान महावीरनी धर्मकथाओ (पं. दोशी), पृ. 180
   (ग) स्टोरीज फ्राम द धर्म आफ नाया (बेवर), इडियन एंटीक्योरी, 19
2. धम्मकहाणुओगो (मुनि कमल), भाग 2
3. जैन आगमों में वर्णित भारतीय समाज (जे.सी. जैन), वाराणसी
4. अट्ठारसविहिप्पगारदेसी भासाविसारए, ज्ञाता, अ.1
5. कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन (पी.एस. जैन), वैशाली, 1975
6. ज्ञाताधर्मकथा (ब्यावर), भूमिका (देवेन्द्रमुनि) पृ. 38–40
7. समवायांग, समवाय 72
8. ज्ञाताधर्मकथा, अ.16
9. कुवलयमालाकहा, धर्मपरीक्षा अभिप्राय,
10. ज्ञाताधर्मकथा, अ.16
11. वही, अ.13
12. वही अ. 12

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

13. वही अ. 17
14. भगवान महावीर–एक अनुशीलन(देवेन्द्रमुनि) पृ. 241–243
15. औपपातिक सूत्र
16. ज्ञाताधर्मकथा, अ. 16
17. वही, द्वितीय श्रुतस्कन्ध में उल्लिखित नगर।
18. ज्ञाताधर्मकथा (ब्यावर), पृ.16
19. वही, पृ. 29–30
20. ज्ञाताधर्मकथा, अ. 9

–अधिष्ठाता, कला संकाय
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org